R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

मूल्य–4 रुपये, वर्ष–25, अङ्क–6 जून 2025

मङ्गलायतन

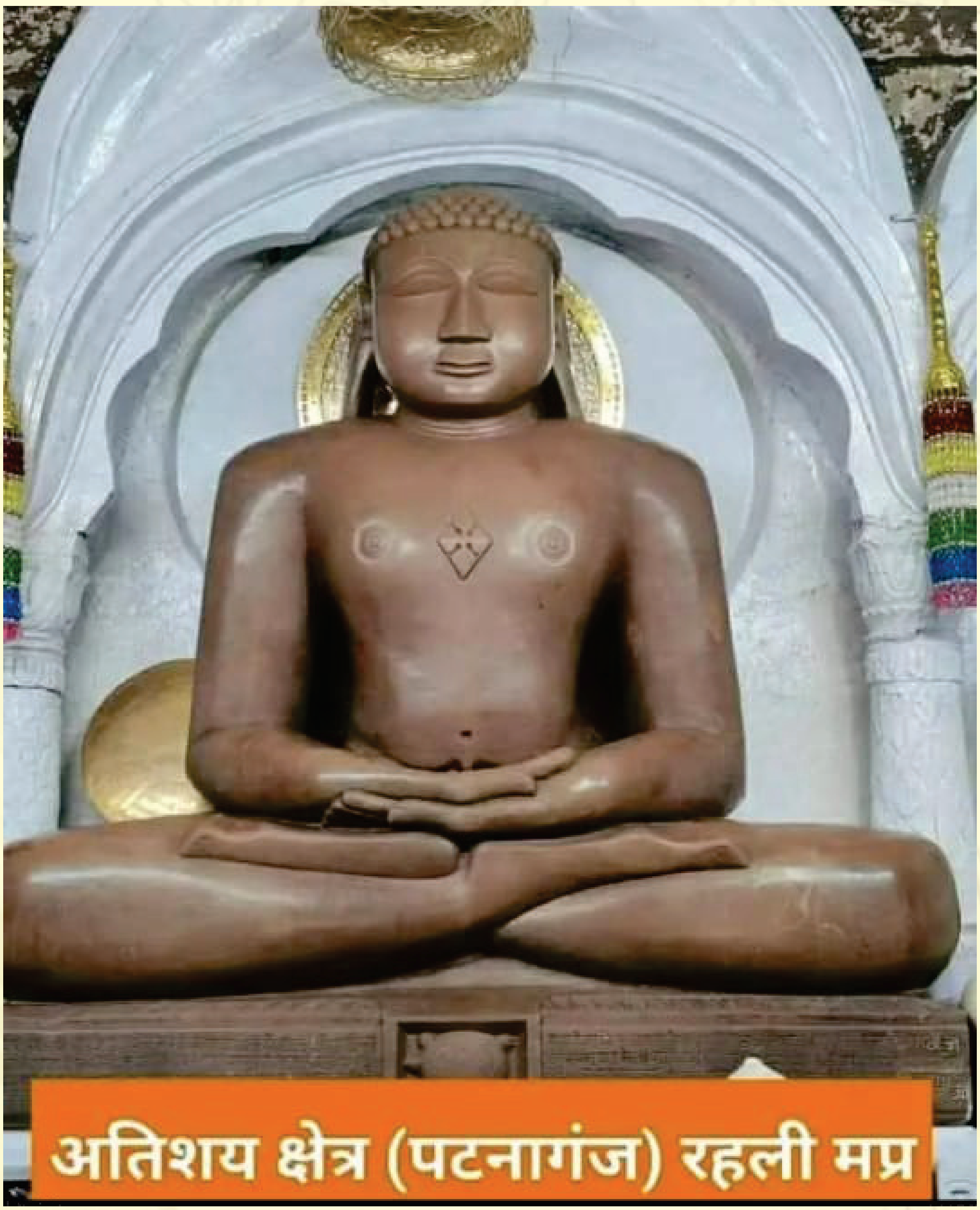

अध्यात्म-वाक्य

आजीविका का साधन हो तो मुमुक्षुओं (मोक्षमार्ग के प्रेमी) को विशेष प्रवृत्ति नहीं करना चाहिए। यहाँ तो रोटियों की कमी नहीं फिर भी माथे पोटली बाँधता है। अरे! रे कहाँ जाना है, जीवन थोड़ा है और यह क्या करता है। भाई ऐसा मनुष्य भव मिला और सत् समझने का अवसर आया तो चार, छह आठ घण्टे वाचन-श्रवण, मनन, सत्समागम करके अपनी आत्मा का हित करके भव सफल कर।

हे भव्य! मरते समय बोलने की अत्यन्त इच्छा होने पर भी जीभ तक नहीं हिला सकता और अपने हाथ की अंगुली भी नहीं हिला सकता। तात्पर्य यह है कि शरीर की कोई अवस्था आत्मा के वश में नहीं है। मैं शरीर को टिकाये हुए हूँ और शरीर अच्छा हो तो धर्म किया जा सकता है, यह मान्यता कहाँ तक ठीक है अर्थात् ठीक नहीं।

1- जिन तत्त्व में अविश्वास नहीं होना चाहिए।

2- जिन वचन में शंका नहीं होना चाहिए।

3- प्रमाद नहीं होना चाहिए।

4- विपरीतता (उल्टी मान्यता) नहीं होना चाहिए।

5- रत्नत्रय की भावना में भूल नहीं होना चाहिए।

6- शुद्धात्मा की प्राप्ति की कामना होना चाहिए।

7- विपरीताभिनिवेश रहित श्रद्धान होना चाहिए।

उक्त सात भूलें होने पर आत्मा के सही स्वरूप का निर्णय नहीं हो सकता है।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र (e-पत्रिका)

वर्ष-25, अङ्क-6 (वी.नि.सं. 2551; वि.सं. 2082) जून 2025

मोहे भावे न भैया...

मोहे भावे न भैया थारो देश,
रहूँगा मैं तो निज-घर में॥ टेक॥

मोहे न भावे यह महल अटारी,
झूँठी लागे मोहे दुनिया सारी;
मोहे भावे नगन सुभेष,
रहूँगा मैं तो निज-घर में॥1॥

हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता,
यहाँ हमारा कोई न दिखता;
मोहे लागे यहाँ परदेश,
रहूँगा मैं तो निज-घर में॥2॥

श्रद्धा ज्ञान चारित्र निवासा,
अनन्त गुण परिवार हमारा;
मैं तो जाऊँगा सुख के धाम,
रहूँगा मैं तो निज-घर में॥3॥

कब पाऊँगा निज में थिरता,
मैं तो उसके लिए तरसता;
मैं तो धारूँ दिगम्बर भेष,
रहूँगा मैं तो निज-घर में॥4॥

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक

स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक

डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि.वि.

सम्पादक मण्डल

बालब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़

डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर

श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार

श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर

श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली

श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई

श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी

श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन

डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका

पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

क्या - कहाँ

द्रव्यानुयोग	योगसार – प्रवचन	5
चरणानुयोग	धन्य जीवन	16
द्रव्यानुयोग	श्री समयसार नाटक	20
	स्वानुभूतिदर्शन :	25
चरणानुयोग	साधु तथा श्रावक	29
प्रथमानुयोग	कवि परिचय	31
	वीर निर्वाण संवत्	32
	समाचार–दर्शन	34

द्रव्यानुयोग

....गतांक से आगे

योगसार ग्रन्थ पर परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन

परिहारविशुद्धि चारित्र

बात जरा ऐसी ली है कि सम्यग्ज्ञान के कारण से धर्मी को राग-द्वेष का परिहार कैसे वर्तता है ? कि उसे किसी पदार्थ की विस्मयता नहीं लगती है। जो पदार्थ जिस स्वरूप में परिणमता है, उस प्रकार उसका स्वभाव वर्तमान पर्याय का है। इस कारण उसे विस्मयता से, विस्मयता से, जिसे होश से जो राग होता है और अविस्मय कि ऐसा कैसे हो ? ऐसी ग्लानि से जो द्वेष होता है - ऐसा राग-द्वेष, ज्ञान में पदार्थ की यथार्थ स्थिति के भासन के कारण विस्मयता या छेदता न होने से **छह द्रव्यों के मूल गुण और पर्यायों के स्वरूप को केवलज्ञानी की तरह यथार्थ और शंकारहित जानता है।** श्रुतज्ञान में भी परोक्षता है - इतनी बात है परन्तु श्रुतज्ञान, केवलज्ञानी जाने उतना ही, वैसा ही जानता है। समझ में आया ? वह अपने ज्ञान में छहों द्रव्य (यथार्थ) जानता है।

कल रात्रि में थोड़ा कहा था और अपने कलश-टीका में आ गया है। कलश-टीका है न ? उसमें (आ गया) कि आत्मा का एक त्रिकाली ज्ञानगुण है, उसकी एक समय की दशा है, वही छह द्रव्यों को जानने की ताकतवाली दशा है। समझ में आया ? आत्मा वस्तु है, उसका त्रिकाली ज्ञानगुण है, उसकी एक समय की अवस्था है; वह एक समय की अवस्था, छह द्रव्यों को जानने की, मानने की... भले अभी परलक्ष्यी है परन्तु एक समय की पर्याय में इतनी ताकत है। समझ में आया ? कलश-टीका में अधिक लिया है। इनने उतारा है, राजमलजी ने इस प्रकार उतारा है और बात यथार्थ है। पर्याय को मानता नहीं, छह द्रव्य को मानता नहीं - ऐसा उतारा है। छह द्रव्य को मानता नहीं, वह आत्मा की पर्याय को मानता नहीं; इस प्रकार यह बात यथार्थ है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा... शशिभाई ! देखो ! यह अन्यमती छह द्रव्य नहीं मानते, इसका अर्थ कि वे द्रव्य के एक गुण की पर्याय को ही नहीं मानते और अपने द्रव्य की एक पर्याय की सामर्थ्य कितनी है, उसे वह नहीं मानता। समझ में आया ? भाई ने कहा है - धर्मदास क्षुल्लक ने, सम्यग्ज्ञानदीपिका में कहा है, जो कोई छह

द्रव्य और छह द्रव्यों के गुण, पर्याय हैं, इन छह को नहीं मानता, वह आत्मा को बिल्कुल मान ही नहीं सकता। समझ में आया? सम्यग्ज्ञानदीपिका.... भाषा क्षयोपशम बहुत थोड़ा है परन्तु उनकी रुचि का परिणमन और अन्दर धमाकेदार उपदेश है। सम्यग्ज्ञानदीपिका, स्वात्मानुभवमनन - ऐसे दो ग्रन्थ हैं। समझ में आया? जोरदार है। क्षयोपशम कम है, इसलिए बारम्बार पुनरावृत्ति बहुत आती है, वह तो आवे। इन तारणस्वामी में पुनरक्ति बहुत आयी है, बहुत। यह तारणपन्थ है न? पुनरक्ति बहुत, परन्तु अन्दर अध्यात्म का जोर इतना है उनका, इतना जोर है... मेरे प्रमाण नहीं मानो तो निगोदं गच्छई, वहाँ बारबार यह कहते हैं, निगोद जाएगा।

भगवान आत्मा अभेदस्वरूप चिदानन्द पूर्ण परमात्मा तेरा विराजमान है। उसे एक समय की अवस्था तो नहीं परन्तु ऐसा अनन्त अवस्था का पिण्ड एक गुण और ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड एक द्रव्य... जिसके एक गुण की एक पर्याय की ताकत छह द्रव्यों को झेल सके, इतनी ताकत! छह द्रव्य को जाने, श्रद्धे और स्वीकार करे, इतनी एक पर्याय की ताकत। समझ में आया? आहा...हा...! ऐसा यह भगवान आत्मा, ऐसी अनन्त पर्यायरूप आत्मा को जिसने अन्तर में जाना, उसने छहों द्रव्य के गुण-पर्याय, केवली जानते हैं, वैसा वह मानता है और जानता है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, भाई!

यह सब आत्मा... आत्मा... आत्मा करते हैं परन्तु आत्मा... आत्मा... कितना और कैसा है? समझ में आया? आत्मा तो अब अभी बहुत गाते हैं। यहाँ की बात 30-31 वर्ष से बाहर आयी न! बहुत आत्मा गाने लगे। अभी कोई कहता था? रजनीश का कल कोई कहता था। रजनीश का ऐसा है, अमुक है, अमुक है। मुम्बई! अरे...! भगवान! भाई!

मुमुक्षु - मुम्बई में उसके अनुयायी बहुत हैं।

उत्तर - मिलते हैं, भाई! पूरी दुनिया पड़ी है। चींटियों को नगर बहुत होते हैं। यह चींटियाँ नहीं निकलतीं? इनके क्या कहलाते हैं यह? शाम को आटा डालते हैं न? उसकी भाषा क्या है? बिल... बिल... है न? कुछ नाम होगा। शाम को चींटियाँ बहुत निकले, फिर यह आटा डाले। आटा! हमारे नगरा कहते हैं, नगरा अर्थात् उनका नगर, उनका घर। शाम को बहुत होती हैं। शाम को बहुत

निकलती हैं, लाखों निकलती हैं; इसलिए कोई मनुष्य हो गया चींटीं ? यहाँ पहले बहुत निकलती थी।

यह तो भगवान आत्मा इतना है कि जिसके एक गुण की, एक समय की एक पर्याय, जो छह द्रव्य को जाने – ऐसा तो एक पर्याय का स्वरूप सामर्थ्य है, ऐसा आत्मा। ऐसे आत्मा... आत्मा... करे यह नहीं चलता। समझ में आया ? ऐसी अनन्त पर्यायें जिसके गुण में – ज्ञानगुण में पड़ी हैं। एक समय की पर्याय छह द्रव्य को जाने – ऐसी अनन्त पर्यायें गुण में पड़ी हैं – ऐसी अनन्त पर्यायों का एक गुण, उसे श्रद्धा करने का श्रद्धागुण, उसकी एक समय की पर्याय इतने को श्रद्धती है, अभी भले पर तरफ में हो परन्तु उस श्रद्धा की पर्याय की इतनी ताकत है कि समस्त गुणों की पर्याय की ऐसी ताकत है – ऐसी पर्याय श्रद्धा करती है, ऐसी अनन्त पर्याय उसके श्रद्धा-गुण में पड़ी है। समझ में आया ? ऐसा एक चारित्रगुण इतना, ऐसा एक आनन्दगुण, ऐसा एक स्वच्छतागुण, ऐसा एक प्रभुतागुण, ऐसा एक कर्तागुण, ऐसा एक कर्मगुण, ऐसा एक कर्णगुण, इसमें है। समझ में आया ? भाई ! आत्मा तो बड़ा भगवान है, भाई !

यह कहते हैं कि ऐसा आत्मा जिसे भासित हुआ, यह उसे छह द्रव्य के मूलगुण, मूल अर्थात् सामान्य और पर्याय का स्वरूप केवलज्ञानी के समान यथार्थ शंकारहित जानता है। शंका कैसी ? शंका का तो नाश हो गया। वहाँ नि:शंकदशा आत्मा की हो गयी। भगवान ही ऐसा बड़ा है। ओ...हो... ! यह सब काम देखो न, जगत में अनेक हो रहे हैं, होते हैं, बिगड़ते हैं – ऐसी लोगों की भाषा में, व्यय होता है, उत्पाद होता है, यह सब पर्याय धर्म है। उसमें ज्ञानी को कोई किसी का कर्ता भासित नहीं होता और उसमें उसकी अद्भुतता और विस्मयता नहीं लगती। समझ में आया ? आहा...हा... ! साधारण प्राणी को तो ऐसा लगता है कि यह क्या ? समझ में आया ?

एक परमाणु एक समय में चौदह ब्रह्माण्ड चीरे, गति करे, पहले समय में गति नहीं थी, और दूसरे समय में हुई – उसका कारण कौन ? एक परमाणु पॉइन्ट है, वह वस्तु ऐसी कुछ है, एक पॉइन्ट परमाणु है, वह एक समय में ऐसी है, दूसरे समय में एक प्रदेश में जाये, तीसरे समय चौदह ब्रह्माण्ड जाये – कारण कौन ? पर्याय की विस्मयता ज्ञानी को भी नहीं आती, यह उसका स्वभाव है। दूसरे समय

में भले ही फिर स्थिर हो जाये, वह एक समय में ऐसा कैसे ? ऐसा कैसे ? उस समय का उसका ऐसा स्वभाव है। समझ में आया ? ऐसा ज्ञानी ने छह द्रव्य के मूलगुण, पर्याय के स्वभाव को जाना है। समझ में आया ?

ऐसा दृढ़ ज्ञान और वैराग्य के धारक सम्यग्दृष्टि पूर्वकर्मों के उदय से यद्यपि गृहस्थपद में गृहस्थ के योग्य अनेक कार्य करते.... करते अर्थात् दिखते हैं। **करते दिखाई देते हैं तो भी वे-वे कार्य आसक्तिभाव से नहीं करते हैं।** यहाँ परिहार है न! परिहार, परिहार करना है। नहीं... नहीं... नहीं। भाव में जुड़ते हैं - ऐसा दिखता है, मानो करते हैं, यह हिलना और चलना और पकाना, खाना और समस्त क्रियाओं का ज्ञानी कर्ता नहीं होता। ज्ञाता रहकर ज्ञान उन्हें अलग रखता है। आहा...हा...! समझ में आया ?

कषाय के उदय को रोग जानता है। देखो, धर्मी तो कषाय के राग को रोग जानता है। वह रोग भी पुरुषार्थ से मिटता है - ऐसा जानता है। मेरे पुरुषार्थ की गति इतनी विपरीत है, इसलिए होता है। मेरे स्वभाव में उसका मैल नहीं है, फिर भी ज्ञानी जानता है कि यह राग (मेरी कमजोरी के कारण हुआ है)। कर्म (मुझे) राग करावे तो कर्म के ऊपर द्वेष आता है। समझ में आया। आहा...हा...! मार डाला! कर्म के ऊपर द्वेष आया परद्रव्य... यह कर्म कुछ कमजोर पड़े न तो ठीक; फिर उसके ऊपर राग आया। सूक्ष्म व्याख्या है, राग-द्वेष की, हाँ! सूक्ष्म व्याख्या है। सत्य की स्थापना करना है न ? सत् ऐसा है, रागी को, हाँ! केवली की बात नहीं है - ऐसा सत् है, वहाँ भी जरा राग का अंश है और ऐसा नहीं होता (- ऐसा कहे) वहाँ भी जरा कषाय के द्वेष का अंश है। भगवान तो वीतराग रस स्वरूप है। समझ में आया ?

एक नय को मुख्य करके, दूसरे को गौण करके स्थापन करना। छद्मस्थ है न ? राग साथ में है इसलिए... हाँ! वस्तु के लिए नहीं। केवली सब कहते हैं और सब स्थापित करते हैं। रागी प्राणी (को) राग है न! ऐसा नहीं होता, भाई! ऐसा मार्ग नहीं होता (- ऐसा कहे उसमें) इतना भी अन्दर प्रशस्त कषाय का अंश है। वीतरागमार्ग में इतना वह पोषाता नहीं, भाई! वीतरागरस ऐसा प्रभु! आँख में कदाचित् छोटा कण जरा समाये, यह समाये नहीं इसे - ऐसा ज्ञायकस्वरूप... दूसरा तो राग-द्वेष कहाँ रहा परन्तु एक नय को मुख्य करके निश्चय ऐसा है

(– ऐसा स्थापित करे) 'निश्चय नयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की' यह – विकल्पवाले नय नहीं, हाँ! दूसरे अबद्ध, बद्ध... यह तो अबद्ध भी इसमें वस्तु यह बराबर है परन्तु यहाँ जहाँ स्थापना में जरा वीर्य, वीर्य जरा वहाँ रुकता है और इतना जरा राग का अंश, वीतरागरस में वह भी नहीं पोषाता है। चल नहीं सकता है – ऐसा स्वरूप है। भाई ! समझ में आया ?

कहते हैं, भगवान आत्मा गृहस्थदशा में रहा होने पर भी, वह स्वयं कार्यों में उसकी लीनता / एकाकार नहीं। समझ में आया ? और राग के उदय के इतने भाग को भी समपने के साथ मिलाने से उस विसमता का अंश, रोग जानता है। समझ में आया ? **मोक्ष का उपाय मूल में एक सम्यग्दर्शन की शुद्धि है। वीतराग यथाख्यात चारित्र और केवलज्ञान की प्राप्ति का यही उपाय है।** भगवान आत्मा उस राग के अंश के मैल आदि द्वेष आदि उन्हें स्वभाव से जहाँ भिन्न जाना है – ऐसे सम्यग्दर्शन में जहाँ आत्मा का आश्रय है – ऐसा समभावी भगवान सम्यक्... सम्यक्... सम्यक्... प्रतीति में आया है, उसके जोर से उसे वीतरागचारित्र और केवलज्ञान के लाभ का यह सम्यग्दर्शन ही उपाय है – ऐसा यहाँ कहा है। समझ में आया ? आहा...हा... !

यह अभी अपने भाई ने गाया है, नहीं ? आनन्दघनजी का गाया है न ? सेठिया ने कुछ गाया है, एक शब्द लिखा है। 'गगन मण्डल में' हाँ ! आया है या नहीं ? उसमें कहीं आया है। आनन्दघनजी ने यह गाया है, आनन्दघनजी... 'गगन मण्डल में गौवा विहाणी, वसुधा दूध जमाया, माखन था सो विरला रे पाया – सन्तों, छाछ जगत भरमाया.... गगन मण्डल में अधबिच कुआ, वहाँ है अमी का वासा, सुगुरा होवे सो भर-भर पीवै सन्तों, नूगुरा जावे प्यासा अबधु, सो जोगी गुरु मेरा, इस पद का करे रे निवेणा'। 'गगन मण्डल में गौवा विहाणी, वसुधा दूध जमाया, माखन था सो विरला रे पाया, पण छाछ जगत भरमाया'। दुनिया को छाछ मिली है। यह पुण्य-पाप की क्रिया और यह... मक्खन तो ज्ञानी खा गये अन्दर से। आहा...हा... !

इसमें कहीं है, हाँ ! लो, यही आया। एक ही लाईन है। सेठिया ने बनाया है 'आत्म गगन में ज्ञान ही गंगा, जामे अमृत वासा, आत्म गगन में ज्ञान ही गंगा, ज्ञान ही गंगा, जामे अमृतवासा; सम्यग्दृष्टि भर-भर पीवै सन्तों, मिथ्यादृष्टि जाय

प्यासा, अबधु, सो जोगी रे गुरु मेरा, इन पद का करे रे निवैरा'। आनन्दघनजी का बड़ा लम्बा है। सब एक-एक देखा है। पहले (संवत) 1978 की साल पहले, हाँ! एक-एक आनन्दघनजी के पद-वद सब खूब देखे हैं।

यह अन्तर आत्मा की बात, यह अलौकिक बात है। भगवान समरसी प्रभु! आहा...हा...! ऐसे समरस में, ज्ञान में ऐसा विषय बदल जाये कि यह ठीक, अठीक, कहते हैं कि यह राग-द्वेष है। वह स्वरूप में पोषाते नहीं हो सकते हैं। उनका जिसे त्याग है, वह वास्तव में परिहारविशुद्धिचारित्र है। अध्यात्म से लिया है न?

तत्त्वार्थसार में लिया है, अन्तिम उद्धरण दिया है। **जहाँ प्राणियों के घात का विशेष रूप से त्याग हो और चारित्र की शुद्धि हो, वह परिहार-विशुद्धिचारित्र है।** यह तत्त्वार्थसार में (आता है)। अमृतचन्द्राचार्य का तत्त्वार्थसार है न? अपने व्याख्यान में तत्त्वार्थसार पढ़ा गया है। कहो, समझ में आया इसमें? यह अत्यन्त संक्षिप्त करके (कहा) अब सब पूरा होने आया है। अब, यथाख्यात, 103 (गाथा)।

☆☆☆

यथाख्यात चारित्र

सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ सो सुहुमु वि परिणामु।
सो सुहुमु वि चारित्त मुणि सो सासय-सुह-धामु॥ १०३॥
सूक्ष्म लोभ के नाश से, सूक्ष्म जो परिणाम।
जानों सूक्ष्म चारित्र वह, जो शाश्वत सुख धाम॥

अन्वयार्थ - (सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ) सूक्ष्म लोभ का भी क्षय होकर **(जो सुहुम वि परिणामु)** जो कोई सूक्ष्म वीतरागभाव होता है **(सो सुहुमु वि चारित्त मुणि)** उसे सूक्ष्म या यथाख्यात चारित्रजनों **(सो सासय सुह धामु)** वही अविनाशी सुख का स्थान है।

☆☆☆

उसमें सूक्ष्मसाम्पराय लिखा है, ऐसा नहीं। इसमें ऐसा है न? हाँ, परन्तु सूक्ष्म ऐसा नहीं। यह सूक्ष्म चारित्र अर्थात् यथाख्यातचारित्र। पहले अपने आया था, उसमें भूल की। पहले शब्द ऐसा था, देखो! 'सूक्ष्म लोभ के नाश से, होय

शुद्ध परिणाम, वह सूक्ष्म सम्पराय है, चारित्रसुख का धाम' - ऐसा नहीं। अपने है इसमें ? सूक्ष्म चारित्र अर्थात् यथाख्यातचारित्र, ऐसा। इन्होंने इसमें सूक्ष्म सम्पराय जोड़ दिया है। सूक्ष्म शब्द पड़ा है न, जहाँ सूक्ष्म लोभ का नाश होता है, वहाँ सूक्ष्म सम्पराय होता है, किसका ? सम्पराय तो राग का नाम है, यह सब खोटा। मूल तो ऐसा है।

सुहुमहँ लोहहँ जो विलउ सो सुहुमु वि परिणामु।
सो सुहुमु वि चारित्त मुणि सो सासय-सुह-धामु॥ १०३॥

यथाख्यातचारित्र की बात करते हैं। भगवान आत्मा में... यह अन्तिम कड़ियाँ हैं न (इसलिए) ठेठ तक लेकर, यथाख्यात तक ले (जाकर), स्वयं भगवान ब्रह्मा और विष्णु स्वयं ऐसा करके पूरा करेंगे। **सूक्ष्म लोभ का भी क्षय होकर....** यह चारित्र की उत्कृष्ट व्याख्या - यथाख्यात्चारित्र। यथाख्यात जैसा स्वरूप अन्दर प्रसिद्ध है - अकषाय, अविकारी, वीतराग, समभाव (स्वरूप) - ऐसी पर्याय में यथा-प्रसिद्धि वीतरागरूप होना, उसे यथाख्यातचारित्र कहा जाता है। कहो, समझ में आया ?

दसवें गुणस्थान में जो सूक्ष्म लोभ रहता है, उसका भी विलय होकर **सुहुमु वि परिणामु - जो कोई सूक्ष्म वीतरागभाव होता है...** ऐसा लेना। सूक्ष्म लोभ का अंश जो दसवीं भूमिका में - गुणस्थान में होता है, उसका नाश होकर जो सूक्ष्म परिणाम प्रगट होता है, एकदम वीतराग परिणाम (प्रगट होता है), **उसे सूक्ष्म अथवा यथाख्यातचारित्र जानो।** उसे सूक्ष्म-बारीक वीतरागी चारित्र पर्याय जानो। सूक्ष्म सम्पराय नहीं, समझ में आया ? वह तो राग है, सम्पराय तो राग है। **वही अविनाशी सुख का स्थान है।** लो! आहा...हा...! एकदम यथाख्यात है न! ऐसी यथाख्यातरूपी निर्मल वीतरागी पर्याय का तो बिम्ब आत्मा है, अकेला अकषायरस, समझ में आया ?

ऐसे भगवान आत्मा के अन्तर अवलम्बन में से पूर्ण वीतरागता प्रगटी और जहाँ अंश लोभ का भी था, उसका व्यय हुआ, वीतरागता का उत्पाद हुआ, वीतरागस्वरूप ध्रुव तो कायम पड़ा है। यहाँ विलय आया न! और परिणाम है, इसलिए उत्पाद-व्यय कहा। समझ में आया ? भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप है, वह तो अकेला समरसी स्वभाव है। समरसी ज्ञातादृष्टा, वह समरसी स्वभाव है।

उसमें जो लोभ का अंश बाकी था, उसका विलय करके – व्यय करके और वीतरागी पर्याय का उत्पाद होना, उसे यथाख्यातचारित्र कहते हैं। वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। कहो, इसमें समझ में आया ? यह चारित्र का भेद है और यह प्रकार है – ऐसी बात दूसरे में नहीं हो सकती, क्योंकि गुण की शुद्धि की वृद्धि के प्रकारों के यह सब नाम हैं। पर्यायशुद्धि होती है, वह बात अन्यत्र नहीं हो सकती। समझ में आया ? समय-समय की शुद्धि का यहाँ तो मिलान करना है।

जिसे आत्मस्वभाव शुद्ध ध्रुव चैतन्य, जिसे अवलम्बन दृष्टि-ज्ञान में आया और उसका आश्रय लेकर जिसने वीतराग समभाव... समभाव... ओ...हो...! समझ में आया ? दसवें गुणस्थान की भूमिका में अबुद्धिपूर्वक जरा राग रहा और उसका नाश होकर वीतरागपर्याय की प्रगट प्रसिद्धि; जैसा स्वभाव है, वैसी पर्याय की प्रसिद्धि अकषाय की हुई वह सूक्ष्म यथाख्यातचारित्र (जानो)।

वही अविनाशी सुख का स्थान है। लो ! अविनाशी सुख का स्थान वह चारित्र है। उस चारित्र का प्रकार है। अन्य कहते हैं, अपने राम... राम... राम... राम... भगवान... भगवान... भगवान... भगवान करो। मोक्ष हो जायेगा समझ में आया ? (अन्य कहते हैं) राम से साक्षात्कार... वह राम यह। 'निजपद रमै सो राम कहिये' समझ में आया ? आनन्दघनजी ने कहा है, भाई ! 'निजपद रमैं सो राम कहिये, कर्म कसे सो कृष्ण कहिये'। यह तो 'निजपद रमैं सो राम कहिये'। अपने में आता है न ? कलश में (आता है) आत्माराम। जैसे बाग में रमते हैं न ? ऐसे भगवान अपने आनन्द बाग में अन्तर रमे – शुद्धता के पर्याय की विशेष प्रगटता हो, उसे आत्मबाग में रमणता, उसे यथाख्यातचारित्र कहते हैं। वह चारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण है वह अविनाशी सुख का कारण है। समझ में आया ?

सुख आत्मा का गुण है, उसे चारों घातिकर्मों ने रोक रखा है.... घाति (कर्म) तो निमित्त है, हाँ ! रोक रखा है अर्थात् कोई द्रव्य रोकता नहीं, अपनी पर्याय में स्वयं भावघाति किया, तब द्रव्यघाति को निमित्त कहा जाता है। यह सोलहवीं गाथा में है, प्रवचनसार की सोलहवीं गाथा – स्वयंभू की गाथा में यह है – द्रव्य, भाव, घातिकर्म। भाई ! आता है न ? सोलहवीं। कहो समझ में आया ?

परन्तु मुख्यरूप से उसे रोकनेवाला मोहकर्म है। ऐसा लिया।

असावधानी... उसकी चर्चा अभी पण्डितों में चलती है। दूसरे एक कहते हैं कि चार कर्म है, एक कहते हैं मोहकर्म है। भाई! पूरा अनन्त आनन्द, अनन्त आनन्द, तो केवलज्ञान होने पर प्रगट होता है। बारहवें में अनन्त सुख प्रगट होता है, सुख प्रगट होता है, अनन्त नहीं प्रगट होता – ऐसी बड़ी चर्चा दो व्यक्तियों में चलती है। कैलाशचन्द्रजी और अजितकुमार!

यहाँ तो आत्मा का अनुभव, सम्यग्दर्शन होने पर अतीन्द्रिय आनन्द का अंश चौथे (गुणस्थान में) प्रगट होता है। उस पाँचवें में आनन्द का अंश बढ़ता है, छठवें में बढ़ता है, सातवें में बढ़ता है, आठवें, नौवें, दशवें में बढ़ते हुए बारहवें (गुणस्थान में) आनन्द पूर्ण हो जाता है। अनन्त नहीं होता। समझ में आया? जहाँ अन्दर केवलज्ञान और केवलदर्शन वह अनन्त वीर्य जहाँ प्रगट हुए, उस आनन्द को अनन्त उपमा दी जाती है। अनन्त आनन्द प्रगट हुआ। समझ में आया? ऐसे अनन्त आनन्द का कारण, यह आत्मा का मोक्ष का मार्ग–उपाय है। स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव। समझ में आया?

यह बात ली है। हाँ! **क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव चार अनन्तानुबन्धी कषाय और दर्शनमोह की तीन प्रकृतियों का जब क्षय कर डालता है, तब क्षायिक सम्यक्त्व और स्वरूपाचरणचारित्र प्रगट हो जाता है।** ऐसा लिखा है, भाई! यह बात सत्य है। इसका विवाद, अभी विवाद है। दूसरे (कहते हैं) स्वरूपा–चरणचारित्र चौथे में नहीं होता, पाँचवें में नहीं होता, छठें में नहीं होता। अरे...! भगवान! पर के आचरण में गुणस्थान बढ़ गया? आहा...हा...! समझ में आया?

भगवान आत्मा अनादि काल से राग–द्वेष की, अनन्तानुबन्धी की तीव्रता के परिणाम में.... आचरण था, तब श्रद्धा, मिथ्या, ज्ञान मिथ्या, और आचरण मिथ्या था। ऐसा भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप का आचरण, दृष्टि हुई, तब प्रतीति हुई, तब ज्ञान हुआ कि यह आत्मा है, तब स्वरूप के आचरण का अंश जगा, कणिका जगी। समझ में आया? आत्मस्वरूप के आचरण की कणिका जगी। पूर्ण आचरण की दशा यथाख्यातचारित्र (है)। समझ में आया? उसका अंश चारित्र यदि चौथे में प्रगट न हो तो आगे वह बढ़ नहीं सकता। समझ में आया?

अरे... ! तत्त्व के निर्णय का विषय होना चाहिए और वह भी समभाव से, शान्ति से वीतरागी चर्चा होना चाहिए। उसके बदले एक दूसरे को झूठा ठहरने की बात - ऐसा नहीं होता, भाई! समझ में आया? यह तो वीतरागी चर्चा है, समभाव से चाहिए। किसी की भूल हो तो भी उसे दूसरे प्रकार से और द्वेषी मानकर या विरोधी मानकर उसे कहना यह कोई सज्जनता की रीत है? होता है, यह वीतरागमार्ग है भाई! इसमें तो शान्ति से, न्याय से जैसे हो वैसे निर्णय करना चाहिए। जो सत्य निकले, उसे स्वीकार करना चाहिए, उसमें कहाँ यह किसी के पक्ष की बात है।

यह बात देखो... भाई ने लिखी है - टोडरमलजी ने और भाई ने लिखी है। गोपालदासजी वरैया ने। जैन सिद्धान्त प्रवेशिका और राजमलजी ने टीका में लिखी है और भाई ने लिखी है - समयसार नाटक में लिखा है परन्तु होता है न? जहाँ आत्मा स्वरूप से पूर्णानन्द प्रभु भासित हुआ, वहाँ उसमें स्थिरता का अंश न आवे तो स्थिरता के बिना यह क्या चीज है (- उसकी) एकदम श्रद्धा हो गयी? परन्तु श्रद्धा के साथ में ज्ञान में कुछ हुआ है या नहीं? स्थिरता के बिना... तीनों के अंश आये हैं या नहीं साथ में? समझ में आया?

वास्तव में सम्यग्दर्शन तो 'सर्व गुणांश वह समकित' है। भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, उसकी प्रतीति नहीं थी, ज्ञान-ज्ञायकपने की उसे (प्रतीति नहीं थी); उसे प्रतीति थी राग-द्वेष-विकार और परसत्ता के स्वीकार में। है स्वयं इसलिए कहीं उसका अस्तित्व तो स्वीकारना चाहिए, इसलिए उसका अस्तित्व यह (स्वरूप) भासित नहीं हुआ तो यहाँ राग-द्वेष में उसने अस्तित्व स्वीकार किया। वहाँ सब ही स्वीकार। श्रद्धा वहाँ, ज्ञान वहाँ, आचरण वहाँ। अब गुलाँट खायी श्रद्धा ने ओ...हो...! मेरा परमात्मा पूर्ण प्रभु तो मैं ही हूँ - ऐसे निज कारणपरमात्मा की दृष्टि, अवलोकन की श्रद्धा की हुई, वहाँ भगवान! कुछ स्थिर हुए बिना किस प्रकार हुई? आहा...हा...! यह स्थिरता है, उसका नाम स्वरूपाचरणरूप में कहते हैं। कहीं शास्त्र की भाषा में सीधा नहीं निकले परन्तु न्याय से तो समझना चाहिए न?

चारित्रमोह की कषाय की पच्चीस प्रकृति है। अनन्तानुबन्धी

चारित्रमोहनीय की जब गयी, तब कुछ हुआ, चारित्र में कुछ हुआ या नहीं ? भले उसे देशसंयम न कहो, सकल संयम नहीं। संयम के स्थानों के जो प्रकार गोम्मटसार में वर्णन किये हैं, उन अमुक स्थान तक में संयम नहीं कहलाता तो वह भले हो परन्तु किंचित स्थिरता प्रगटी ऐसा तो कहना पड़ेगा या नहीं। इसमें विवाद किसका ? इसमें तकरार किसकी ? भाई ! किसकी होवे भूल, ख्याल में न होवे तो उसे इस प्रकार समझना चाहिए।

'सर्व जीव है ज्ञानमय' आया न अपने ? सामायिक में... 'सर्व जीव ज्ञानमय' प्रभु ज्ञानमय है न प्रभु ! यह तो एक समय की, एक समय की भूल, हाँ ! एक समयमात्र भूल उसमें टिकती है, दो समय कभी भूल टिकती ही नहीं। भूल, पर्याय है। समझ में आया ? आहा...हा... !

त्रिकाल भगवान अनन्त गुण से शाश्वत् तत्त्व अन्दर है। उसकी जहाँ दृष्टि हुई तो स्वरूपाचरणचारित्र साथ ही प्रगट होता है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद भी साथ में आता है और प्रभुता का, एक प्रभुता नाम का गुण जो है, उसकी प्रभुता पर्याय में भी प्रभुता का अंश प्रगट होता है। ईश्वरता का अंश प्रगट होता है। ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव को स्वरूपाचरण होता है।

यह शक्तियाँ प्रगट होने पर जब ज्ञानी अपने उपयोग को अपने आत्मा में स्थिर करता है, तब ही स्वरूप का अनुभव आता है और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। अविरत सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में इस सुख का प्रगटपना हो जाता है। यह वस्तु है, उसे अतीन्द्रिय स्वभाव, स्वभाव है, उसका स्वाद न आवे तो उसकी श्रद्धा कहाँ हुई ? खरगोश के सींग की श्रद्धा करनी है ? कुछ वस्तु हो तो, उसकी करनी है न ? तो यह चीज आनन्द और ज्ञानमूर्ति पूर्ण है – ऐसा उसके ज्ञान-श्रद्धान में आये बिना, उसे आनन्द का स्वाद आये बिना, उसे सच्ची प्रतीति नहीं हो सकती। इसलिए सम्यग्ज्ञान में स्वरूपाचरण और आनन्द का अंश स्वाद में होता है, अनन्त गुण का अंश होता है। समझ में आया ? उसे यहाँ विशेष पूर्ण हो, उसे यथाख्यात कहते हैं। पूर्ण स्थिरता और पूर्ण आनन्द उसे यथाख्यात कहते हैं। परम यथाख्यात तेरहवें (गुणस्थान में)। वह अनन्त आनन्द हो गया, अनन्त आनन्द हो गया। उसे परम यथाख्यात कहा है। वह यथाख्यातचारित्र साक्षात् मोक्ष का कारण है। ●

चरणानुयोग

परम उपकारी जीवनशिल्पी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के आत्महित की प्रेरणादायक विशिष्ट प्रवचनांश

धन्य जीवन

अहो! जो चैतन्यलक्ष्यी जीव है, वही प्रशंसनीय है... चैतन्य के लक्ष्यरहित जीवन तो मृतक समान है। चैतन्य का भान करके जो उसके अनुभव में स्थिर हुआ, उसकी धन्यता की तो बात ही क्या? परन्तु जगत् जञ्जाल की चिन्ता छोड़कर, जिसके अन्तरङ्ग में आत्मा के हित की चिन्ता जागृत हुई है, उसका जीवन भी प्रशंसनीय है।

यह जीव, अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। अनादि से संसार में परिभ्रमण करते हुए इसने आत्मा को विस्मृत करके, शरीरादि पर की ही चिन्ता की है किन्तु आत्मा का स्वभाव क्या है और उसका संसार परिभ्रमण कैसे मिटे? – इसकी चिन्ता कभी नहीं की है; इसलिए आचार्य भगवान कहते हैं कि अहो! जो चैतन्यस्वरूप आत्मा में स्थिर हुए हैं, उनकी तो क्या बात! परन्तु जिन्होंने आत्मा की चिन्तामात्र का परिग्रह किया है, उनका जीवन भी प्रशंसनीय है।

जो पुरुष इस शुद्धात्मा को पहचान कर, उसके ध्यान में स्थिर रहता है, उसकी बात तो दूर रहो, परन्तु जो पुरुष शुद्धात्मा की चिन्ता का परिग्रह करनेवाला है, उसका जीवन भी इस संसार में प्रशंसनीय है तथा वह देवों द्वारा भी पूज्य है। इसलिए भव्य जीवों को सदा शुद्धात्मा का चिन्तन करना चाहिए।

श्री पद्मनन्दि मुनिराज, महान् दिगम्बर सन्त मुनि थे। वे जङ्गल में आत्मा की रमणता में निमग्न रहते थे। उन्होंने जङ्गल में इस पद्मनन्दिपञ्चविंशति शास्त्र की रचना की है। उसमें वे कहते हैं कि अहो! जो जीव, देह और विकार से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा को जानकर उसके ध्यान में स्थिर होता है, उसकी बात तो दूर रहो अर्थात् उसकी तो बात ही क्या है! परन्तु जिसे मात्र शुद्धात्मा की चिन्ता का परिग्रह वर्तता है अर्थात् जो अन्य सभी चिन्ताएँ छोड़कर मात्र आत्मा के चिन्तन में सदा तत्पर रहता है, उसका जीवन भी धन्य है। लक्ष्मी इत्यादि के परिग्रह की पकड़ तो ममता और संसार का कारण है; इसलिए उस जीवन को धन्य नहीं कहते, किन्तु चैतन्यतत्त्व की चिन्ता की जिसने पकड़ की है – ऐसे

जीवन को सन्त प्रशंसनीय कहते हैं। यहाँ चिन्ता कहने से राग नहीं समझना चाहिए, अपितु ज्ञान में चैतन्य की महिमा का घोलन समझना चाहिए।

संसार में परिभ्रमण करते हुए अनन्त बार मनुष्य देह पाकर भी आत्मा के भान बिना मरण किया परन्तु आत्मा क्या है ? – उसकी बात का परिज्ञान नहीं किया; इसलिए यहाँ उसकी महिमा बतलाते हुए कहते हैं कि बाहर की चिन्ता मिटाकर जो आत्मस्वरूप में स्थिर हैं, उन्होंने तो करने योग्य कार्य कर लिया है, उनकी तो क्या बात! परन्तु जिन्हें जगत् की चिन्ता छोड़कर, आत्मा की चिन्ता की पकड़ भी हुई है कि अहो! मैंने अपने आत्मा को अनन्त काल से पहचाना नहीं, अनन्त काल में कभी आत्मा का ध्यान नहीं किया; आत्मा को भूलकर बाह्य पदार्थों की चिन्ता में ही परिभ्रमण किया है; अब, सत्समागम से आत्मा को जानकर उसी का ध्यान करनेयोग्य है – ऐसी आत्मा की चिन्ता का परिग्रह करे, पकड़ करे, उसका जीवन भी प्रशंसनीय है।

श्रीमद् राजचन्द्रजी इस पद्मनन्दिपञ्चविंशति शास्त्र को 'वन शास्त्र' कहते हैं। यह शास्त्र वन में रचित है और वन में रहकर ज्ञान-ध्यान करने के लिये यह एक उत्तम शास्त्र है; इसलिए इसे 'वन शास्त्र' कहा है। आत्मा का भान करके जो आत्मध्यान में स्थिर हुए हैं, उन्हें तो सर्वत्र वन ही है, उनका आत्मा ही उनका वन है।

अहा! मेरा स्वभाव जगत् का साक्षी/ज्ञाता है, क्षणिक विकार अथवा देह मेरा स्वरूप नहीं है; इस प्रकार जिसके अन्तर में चैतन्य की चिन्ता जागृत हुई है, उसकी आचार्यदेव प्रशंसा करते हैं। अहो! जो चैतन्यलक्ष्यी जीवन जीता है, वही प्रशंसनीय है। जो जीव, चैतन्य के लक्ष्य बिना जीवन जीते हैं, वे तो मृतक समान हैं।

यह शरीर तो संयोगी अनित्य है – ऐसे शरीर तो अनन्त आये और गये, किन्तु मेरा आत्मा अनादि-अनन्त एकरूप है, उसका कभी नाश नहीं होता। इस प्रकार जिसे दिन-रात आत्मा की चिन्ता जागृत हुई है, आत्मा क्या है ? – उसका भान करने के लिये, उसका ध्यान करने के लिये, उसकी भावना करने के लिये, जिसे सदा अन्तर में रटन चालू है, उसका जीवन प्रशंसनीय है। जगत् की, जञ्जाल की चिन्ता के समक्ष जिसे आत्मा के विचार का भी अवकाश नहीं है, उसका जीवन तो व्यर्थ चला जाता है। जगत् की, जञ्जाल की चिन्ता का झंझट छूटकर जिसे आत्मा की चिन्ता जागृत हुई है, उसका जीवन धन्य है।

अमेरिका में ऐसी मशीन होती है कि उसमें पैसा डालते ही अपने आप फोटो

पकड़कर (खिंचकर) बाहर आ जाता है। लोगों को ऐसी मशीन का विश्वास आता है परन्तु आनन्दकन्द आत्मा में जितनी पुरुषार्थ की एकाग्रता करे, उतनी निर्मल पर्याय प्रगट होती है अर्थात् जैसी पुरुषार्थ की एकाग्रता करे, वैसा ही फोटो पर्याय में पड़ जाता है – ऐसी चैतन्यशक्ति का विश्वास जगत् को नहीं आता है। चैतन्य शक्ति को पहचानकर उसके साँचे में जितनी पुरुषार्थ की एकाग्रतारूप कीमत डालें, उतनी निर्मलदशा अन्दर की शक्ति में से प्रगट हुए बिना नहीं रहती।

'एक अणुबम गिरता है तो सम्पूर्ण नगर का नाश कर देता है' – इस प्रकार जगत् के जीव अणुबम की शक्ति का विश्वास और महिमा करते हैं किन्तु आत्मा के श्रद्धारूपी अणुबम में ऐसी सामर्थ्य है कि वह अनन्त कर्मों को एक क्षण में भस्म कर देता है; उसका विश्वास और महिमा आना चाहिए। पहले अन्तर में आत्मा की जिज्ञासा और मन्थन जागृत होना चाहिए। अन्तर के चैतन्यतत्त्व को शोधन के लिये उसका अनुभव करना चाहिए, उसका साक्षात्कार करने के लिये और उसके ध्यान में स्थिर होने के लिये जिसे रात और दिन; स्वप्न अथवा जागृतदशा में; हिलते–चलते सदा रटन चलती है, उसका जीवन धन्य है।

जिस प्रकार माता से पृथक् पड़े हुए बालक को 'मेरी माँ... मेरी माँ...' इस प्रकार अपनी माता की ही रटन रहा करती है। कोई उससे पूछे कि तेरा नाम क्या है ? तो वह कहेगा 'मेरी माँ।' कोई उससे खाने के लिये पूछे तो कहेगा 'मेरी माँ', इस प्रकार वह माता की ही रटन करता है; इसी प्रकार जिन भव्य जीवों को अन्तर में आत्मा की दरकार जगती है, आत्मा की ही रटन और आत्मा की ही चिन्ता जो प्रगट करते हैं, जो आत्मा के अतिरिक्त अन्य की रुचि अन्तरङ्ग में नहीं होने देते, उनका जीवन धन्य है।

अहो! मेरा आत्मा पूर्ण चिदानन्दस्वरूप है। जब तक उसका भान और प्राप्ति न हो, तब तक यथार्थ शान्ति अथवा सुख प्राप्त नहीं हो सकता है। अभी तक का अनन्त काल आत्मभान के बिना भ्रान्ति में गँवाया है, अब एक क्षण भी गँवाना नहीं है। इस प्रकार आत्मा की चिन्तावाला जीव अन्य किसी की रुचि नहीं करता।

अहो! जो इस चैतन्यस्वभाव का भान प्रगट करके, ध्यान में उसे ध्याता है, उसकी महिमा की क्या बात करना! उसने तो कार्य प्रगट कर लिया है; इसलिए वह तो कृतकृत्य है ही, परन्तु जिसने उसके कारणरूप रुचि प्रगट की है अर्थात् जिसे यह चिन्ता प्रगट हुई है कि अहो! मेरा कार्य कैसे प्रगट हो ? मुझे अन्दर से आनन्दकन्द आत्मा का अनुभव कैसे प्रगट हो ? उस आत्मा का जीवन भी धन्य

है, संसार में उसका जीवन प्रशंसनीय है – ऐसा सन्त-आचार्य कहते हैं।

आचार्यदेव कहते हैं कि जिसने जगत् में पैसा, स्त्री, शरीर इत्यादि की चिन्ता में अभिवृद्धि की है, उसका जीवन हम प्रशंसनीय नहीं कहते हैं परन्तु जिसने अन्य परिग्रह की चिन्ता छोड़कर चैतन्य की चिन्ता का ही परिग्रह किया है, उसका जीवन शान्ति और समाधि प्रदान करने के कारणरूप है, मनोहर है, रमणीय है, प्रशंसा योग्य है; देह छूटने के काल में उसे अन्तर में आत्मा की शान्ति और समाधि प्रगट होगी; इसलिए उसका जीवन धन्य है। बड़े-बड़े देव भी आकर ऐसे भव्य जीवों की सेवा और आदर करते हैं।

यह मनुष्यभव प्राप्त करके करोड़ों रुपये कमाना अथवा मान प्रतिष्ठा इत्यादि प्राप्त करने में जीवन व्यतीत करने को यहाँ धन्य नहीं कहते हैं, अपितु जो अन्तरङ्ग में चैतन्य की भावना करता है, उसका जीवन धन्य है – ऐसा कहते हैं।

मैं इस जड़ शरीर से भिन्न हूँ। अहो! मेरे आत्मा का क्या होगा? यह जड़ शरीर तो यहीं पड़ा रहेगा और मैं तो अकेला चला जाऊँगा। जब यह शरीर ही मेरे साथ स्थायी रहनेवाला नहीं है, तब फिर अन्य स्त्री, परिवार, लक्ष्मी इत्यादि की तो बात ही क्या है? अरे! विकार भी मेरा स्वरूप नहीं है, मेरा आत्मा नित्य शुद्ध चिदानन्द है। सिद्ध भगवान जितना परिपूर्ण सामर्थ्य मुझमें भरा है, उसे मैं पहचानूँ; इस प्रकार जिसे चौबीस घण्टे अन्तरङ्ग में रटन चलती है – ऐसे धर्म की चिन्तावाले धर्मात्माओं को धन्य है! ऐसी पवित्रतावाले जीवों का पुण्यवन्त देव भी आदर करते हैं।

आत्मस्वभाव के लक्ष्यवाला जीवन ही आदरणीय है, इसके अतिरिक्त दूसरा जीवन आदरणीय नहीं गिना गया है; इसलिए भव्यात्माओं को बारम्बार शुद्धात्मा की चिन्ता में और उसी के रटन में रहना चाहिए – ऐसा श्री आचार्यदेव का उपदेश है।

शरीर, पैसा, परिवार अथवा देश इत्यादि का जो होना हो, वह होगा; उन्हें संयोगरूप रहना होगा तो रहेंगे, जाना होगा जाएँगे; मेरे आत्मा से तो वह सब भिन्न हैं। मैं नित्य रहनेवाला चैतन्यबिम्ब हूँ, उसे पहचानकर उसमें स्थिर रहूँ – यही मेरा कर्तव्य है। जिसे आत्मा की ऐसी रुचि और छटपटाहट प्रगट हुई है, उसे वह नित्य शान्ति और आनन्द प्रदाता है। उसका जीवन धन्य है। भाई! करने योग्य हो तो यह एक ही कार्य है।●

[सम्यग्दर्शन, (भाग-2)
पद्मनन्दिपञ्चविंशति एकत्वसप्तती अधिकार, गाथा 65 के प्रवचन से, पृष्ठ 65-69]

द्रव्यानुयोग

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

कर्त्ताकर्म क्रिया द्वार प्रवचन

यह नाटक समयसार शास्त्र है। इसके इस काव्य में यह बात सिद्ध की है कि मिथ्यादृष्टि जीव भावकर्म का कर्त्ता होता है। वस्तुत: राग आत्मा का स्वरूप नहीं है, इसलिये राग आत्मा से भिन्न है; परन्तु मिथ्यादृष्टि राग को आत्मा से अभेद मानता है। उसको राग में अभेदपने का आग्रह है। इसकारण वह राग का कर्त्ता होता है। अर्थात् मिथ्यात्वभावरूपी विकल्प का कर्त्ता होता है।

जिसकी दृष्टि में अपने स्वभाव के अस्तित्व का अभाव है, वह राग के अस्तित्व को ही अपना अस्तित्व मानकर उसका कर्त्ता होता है। उसको निज सत्ता स्वभाव का पता नहीं है, प्रेम नहीं है, उसका आदर नहीं है; परद्रव्य का आदर है–इसकारण पर को अपना मानकर विकल्प का कर्त्ता होता है, पर का तो कर ही नहीं सकता। उसको ज्ञानानन्दस्वरूप सत्ता का स्वीकार नहीं है, इसलिये जो व्रत, भक्ति, दान का अथवा जो हिंसादि पाप का विकल्प उत्पन्न होता है उसका वह कर्त्ता होता है।

वस्तुत: आत्मा परपदार्थ से पंगु है; क्योंकि आत्मा परपदार्थ से रहित है। आत्मा तो राग से भी रहित ही है; परन्तु अज्ञानी को अपना स्वरूप क्या है यह पता नहीं है – इसकारण वह राग को ही स्वरूप मानकर विपरीत अभिप्राय करके राग का कर्त्ता होकर राग को ही किया करता है।

अज्ञानी को ऐसा लगता है कि प्रत्यक्ष दिखता है कि मैं पर के कार्य करता हूँ और पर मेरा कार्य करता है...और तुम कहते हो कि आत्मा पर का कार्य नहीं करता... ? भाई ! तेरी नजर आत्मा पर नहीं है; इसलिये आत्मा की सत्ता में क्या हो रहा है, इसका तुझको पता नहीं है और पर की सत्ता में पर का कार्य हो रहा है, मेरे से नहीं इसका भी तुझको पता नहीं है। इस कारण जहाँ तक मैं पर का कर्त्ता हूँ, पर मेरे हैं – ऐसी मान्यता है वहाँ तक उसको विभाव का कर्त्ताकर्मपना नहीं मिटता है।

चैतन्य को चैतन्य का आनन्दरस नहीं है, वह राग के रस में डूब गया है – इस कारण राग के रसिया का राग का कर्त्ता–कर्मपना नहीं छूट सकता। 'विकल्पक

परे कर्त्ता' – ऐसा शब्द पाठ में है न! परे अर्थात् वास्तव में। मिथ्यादृष्टि जीव भी पर को तो नहीं करता और यथार्थ ज्ञान भी नहीं करता, वह तो वास्तव में राग का ही कर्त्ता होता है।

कोई कहता है कि 'अपने को पर का कर्त्ता नहीं मानता वह दिगम्बर जैन नहीं है।' भाई! दिगम्बर जैन–यह तो वस्तु का स्वरूप है। उसको राग का वस्त्र भी नहीं होता। राग का कर्त्ता होने वाला भी दिगम्बर जैन नहीं है...ऐसी बात है, वहाँ पर के करने की बात तो दूर ही रह गई। वस्तु तो निजसत्ता–स्वभावरूप है, उसमें राग या पर का कर्तव्य नहीं होता; परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव ही राग का कर्त्ता होता है। पर के कार्य करना तो जीव की मर्यादा से बाहर है। मिथ्यादृष्टि की मर्यादा इतनी है कि वह अनेक प्रकार के राग और द्वेष को करता है; परन्तु पर का करना तो उसकी भी मर्यादा से बाहर है और वह स्वभाव के कार्य को तो करता ही नहीं। इसकारण मात्र रागादि विकारीभाव को ही किया करता है – विकल्प ही किया करता है। चौबीसों घन्टें राग करना यह एक ही मिथ्यात्वी का कार्य है, इसके अतिरिक्त वह अन्य कार्य नहीं करता।

मिथ्यादृष्टि जीव अपनी भूल से परद्रव्यों को अपना मानता है। देखो! 'अपनी भूल से' पर को पर नहीं जानकर स्व मानता है; परन्तु पर कभी अपना नहीं होता; व्यर्थ अभिमान करता है। अज्ञानी मानता है कि हमारी होशियारी से यह दुकान व्यवस्थित चलती है। संत कहते हैं कि अरे! तेरे लक्खण (लक्षण) तो देख! ज्ञान को छोड़कर अज्ञान का कर्त्ता होता है। भाई! यह चिदानन्द वस्तुस्वभाव का काम नहीं है। धर्मी विकार का कर्त्ता नहीं होता।

70 वर्ष पहले हम दुकान पर बैठते थे, परन्तु मात्र व्यापार ही नहीं किया करते थे, शास्त्र भी बॉचते थे। उसमें द्रोपदी को विदेह का एक राजा अपहरण करके ले गया, उसे छुड़ाकर लाने के लिये पाँचों पाँडव श्रीकृष्ण के साथ वहाँ पहुँचे, वहाँ कृष्ण की शूरवीरता की परीक्षा नहीं की और वहाँ से आकर पांडवों ने श्रीकृष्ण की परीक्षा करने के लिये नौका नहीं भेजी, तब श्री कृष्ण क्रोधित होते हैं और द्रोपदी उनकी विनय करती है। यह सारा वृतान्त समझाय में बहुत सरस आता है।

प्रभुजी! विनवु गोद बिछाय के रोष निवारिये रे लाल...

प्रभुजी! मोटा होय दातार, बोले मुख मीठा रे लाल....

प्रभुजी ! छोरु कुछोरू थाय, मावतर कुमावतर न थाय...।

तब श्री कृष्ण द्रोपदी से कहते हैं कि द्रोपदी ! हमारी उठी हुई गदा वापिस नहीं होती। कृष्ण कोई साधारण पुरुष थोड़े ही थे। महापुरुष उल्टे पड़े तो भी शूरवीर और सुल्टे पड़े तो मोक्ष प्राप्त करलें ऐसे होते हैं। कृष्ण भी भविष्य में तीर्थंकर होने वाले हैं। यहाँ महा भगवान आत्मा भी विपरीत चले तो राग को अपना मानकर उसका कर्त्ता होता है और सम्यक् पुरुषार्थ करे तो स्वभावरूप परिणम जाता है, राग का कर्त्ता नहीं होता।

जैसे सट्टे के व्यापार वाले दिया-लिया, दिया-लिया-ऐसे किया करते हैं। उसी प्रकार अज्ञानी राग-द्वेष और राग-द्वेष किया ही करते हैं। मैंने दिया, मैंने लिया, मैंने खाया, मैंने पिया, मैंने इतने-इतने काम किये-ऐसे मिथ्या अभिमान का सेवन किया करते हैं। त्रिलोकनाथ परमात्मा जगत में जाहिर करते हैं कि तूने अज्ञानदशा में अशुद्ध भाव को ही किया है, अशुद्धभाव का ही कर्त्ता हुआ है। शुद्धभाव जो कि त्रिकाल तेरा स्वरूप है उसका तो तुझको पता ही नहीं है और जड़ कर्म तथा शरीरादि का तू कर ही नहीं सकता, इस कारण उनके कार्य भी तूने कभी नहीं किये हैं। तूने तो मात्र पुण्य-पाप विकारी भाव ही किये हैं। अनादि से अज्ञानी जीव ने यह एक ही कार्य किया है।

इस प्रकार यह 50 वें कलश का काव्य (32वों) हुआ। अब 51वें कलश का 33वाँ काव्य कहते हैं।

मिथ्यात्वी जीव कर्म का कर्त्ता और ज्ञानी अकर्त्ता है

करै करम सोई करतारा।
जो जानै सौ जाननहारा।।
जो करता नहि जानै सोई।
जानै सो करता नहि होई ॥33 ॥

अर्थ:- जो कर्म करे वह कर्त्ता है, और जो जाने सो ज्ञाता है, जो कर्त्ता है वह ज्ञाता नहीं होता और जो ज्ञाता है वह कर्त्ता नहीं होता।

भावार्थ:- मूढ़ और ज्ञानी दोनों देखने में एकसी क्रिया करते हैं, परन्तु दोनों के भावों में बड़ा भेद रहता है। अज्ञानी जीव ममत्वभाव के सद्‌भाव में बन्धन को प्राप्त होता है और ज्ञानी ममत्व के अभाव में अबंध रहता है ॥33 ॥

काव्य – 33 पर प्रवचन

मूल पाठ में यह स्पष्ट कहा है कि 'यः करोति स करोति केवल' जो राग को करता है वह अकेले राग को ही करता है। थोड़ा शुद्धभाव करता है और थोड़ा अशुद्धभाव करता है–ऐसा नहीं होता। भगवान को भूलकर भूल वाला जीव अकेली अशुद्ध परिणति को ही करता है। अज्ञानी परमानन्द को भूला हुआ जीव थोड़ा शुद्धभाव भी करता है और थोड़ा अशुभ राग भी करता है– ऐसा तीनकाल में नहीं होता। वह भले ही मानता है कि मैं शरीरादिक के कार्य करता हूँ; परन्तु जीव परद्रव्य के कार्य तो कर ही नहीं सकता; करे तो राग को करता है, अन्य पर को अथवा अपने शुद्धभाव के कार्य को अज्ञानी नहीं करता।

जिसने चैतन्य के शुद्ध द्रव्यस्वभाव को जाना, देखा और अनुभव नहीं किया है वह करे तो केवल अशुद्ध परिणति को ही करता है; परन्तु शुद्ध परिणति नहीं कर सकता। जिसने चैतन्य के शुद्ध द्रव्यस्वभाव को देखा, जाना और अनुभव किया है वह तो अकेले शुद्ध परिणाम को ही करता है, वह अशुद्ध परिणाम का कर्त्ता नहीं होता। संक्षिप्त में–'जाननेवाला मात्र जानता है और करनेवाला अकेले विकार को करता है।'

शुद्धात्मा को जाननेवाला ज्ञानी तो जानता है कि–'मैं तो सदा ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ। 'मेरे अस्तित्व में विकार–मलिनता का त्रिकाल अभाव हैं। मेरे स्वभाव में तो शुद्धता का सद्‌भाव है।' इस प्रकार जिसने जाना वह तो जाननेवाला ही रहता है, उसको रागादि होते हैं ऐसा कहना वह उपचार हैं। वस्तुतः तो वह जाननहार ही है। जो होता है उसको जाने, जो जाये उसको जाने, उदय को जाने, उदयभाव को जाने, निर्जरा को जाने–सबको जानता है। उसका ही नाम सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी है।

जिसको आत्मा का भान हुआ है वह सम्पूर्ण दुनिया का मात्र साक्षी रहता है। राग से लेकर जगत की समस्त दशाओं का केवल साक्षी है–दृष्टा मात्र है।

भगवान सर्वज्ञ के मुख से आई हुई यह वाणी है कि जो कोई राग का कर्त्ता होता है वह अकेला राग का कर्त्ता ही है, वह जाननहार नहीं रह सकता और जिसको ऐसा भासित हुआ है कि मैं अकेला जानने–देखनेवाला ही हूँ वह तीनकाल–तीनलोक का तथा रागादिक परिणाम का जाननेवाला ही रहता है, कर्त्ता

नहीं होता।

कितनी स्पष्ट बात की है कि जो एक छोटे से छोटे राग का कर्त्ता होता है वह कर्त्ता ही है, वह विकार को ही करेगा; धर्म या वीतराग शान्ति को किंचितमात्र भी नहीं कर सकेगा और जो स्वभाव के ज्ञान द्वारा ज्ञाता हुआ वह केवल ज्ञाता ही रहता है। वह छोटे-बड़े किसी राग का कर्त्ता नहीं होता।

तब प्रश्न होता है कि यदि ज्ञाता केवल ज्ञाता ही रहता है तो फिर सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती का 96 हजार रानियों से विवाह, तथा वह बड़े-बड़े महलों में रहता है, 16 हजार देव जिसकी सेवा करते हैं, मणि रत्न से जड़े हुए हीरे के सिंहासन पर बैठता है, जिसके मित्र इन्द्र होते हैं-यह सब आडंबर किसका ? ऐसा प्रश्न होता है; परन्तु ज्ञानी वास्तव में ज्ञाता है, उसको यह कोई आडंबर उपादेय नहीं है।

कल गोंडल से आये हुए मेहमानों में दीक्षा ली हुई बहिन भी थी। वे लोग कहते थे कि कुछ सुनाओ, तो कहा कि अन्दर में सम्यग्दर्शन के बिना धर्म की शुरूआत नहीं होती। यह मार्ग कोई अलौकिक ही है बापू! राग और विकल्प से पार चैतन्य के अनुभव के बिना सम्यक्त्व नहीं होता और सम्यक्त्व के बिना धर्म का प्रारम्भ नहीं होता। यह बात हमने तो ढ़िंढोंरा पीट-पीटकर कर की हैं, कोई गुप्त नहीं रखी है। सम्प्रदाय की दृष्टि छोड़कर हम साधु नहीं है-ऐसा कहनेवाले विरले भी कोईक होते हैं। वीतराग का मार्ग कोई जुदा है और लोग दूसरे प्रकार मात्र क्रियाकाण्ड में धर्म मान बैठे हैं।

अहा! जिसको सम्यग्दर्शन हुआ है वह केवल ज्ञाता-दृष्टा है, उसको अशुद्धि का करना भी बिलकुल नहीं रहा है। जानने-देखने का परिणमन ही उसका है। राग का परिणमन उसका नहीं है। तथा जो केवल अशुद्ध परिणमन का ही कर्त्ता है वह अंश मात्र जाननेवाला नहीं रहता-उसको ज्ञाता की भूमिका प्रगट नहीं होती।

यह तो वीतराग त्रिलोकनाथ का संदेश है, संत तो बीच में आड़तिया होकर संदेश देते हैं। आहा..हा! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकर त्रिलोकनाथ को एकसमय में तीनकाल-तीनलोक का ज्ञान है, उनकी यह वाणी है। जो कर्म अर्थात् राग को करता है वह कर्त्ता है और जो जानता है वह ज्ञाता है। जो कर्त्ता है वह ज्ञाता नहीं होता और जो ज्ञाता है वह कर्त्ता नहीं होता।

क्रमशः

द्रव्यानुयोग

गतांक से आगे

स्वानुभूतिदर्शन : बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न — रुचि कैसे हो ?

समाधान — रुचि अपने से होती है, कोई कर नहीं देता। रुचि स्वयं को भीतर से लगनी चाहिए। गुरुदेव ने तो अद्‌भुत वाणी की वर्षा की है; अब रुचि करनी सो अपने हाथ की बात है। गुरुदेव ने कहा है कि — आत्मा कोई अपूर्व-अनुपम है; आत्मा में सब कुछ है; उस सम्बनिधत विचारकर-निर्णय करके रुचि जागृत करना है।'रुचि अनुयायी वीर्य।' अपने आत्मा के ही प्रयोजनवाली सच्ची रुचि हो तो ज्ञान उसमें सच्चा कार्य करता है। रुचि ऐसी लगे कि कहीं रुके नहीं; ऐसी तीक्ष्ण रुचि होनी चाहिए।

(गीत) आता है न? कि : 'मुझे तो चलते-फिरते याद प्रभु की आती है'—ऐसी आत्मा की रुचि होनी चाहिए कि जहाँ देखूँ वहाँ मुझे आत्मा ही स्मरण में आये, हिलते-डोलते आत्मा ही याद आये।'मेरा आत्मा कैसे प्रगट हो ?' इस प्रकार मुझे सब कार्यों में आत्मा याद आये।'मुझे तो भोजन करते याद प्रभु की आती है' ऐसी आत्मा की रुचि और लगन लगे तो अन्दर से आत्मा प्रगट होने का अवकाश आये।

आत्मा की रुचि ऐसी लगनी चाहिए कि कहीं भी रस न लगे और सब ओर से रस टूट जाये।'मुझे तो शयन करते याद प्रभु की आती है' इस प्रकार मैं शयन करूँ तो भी आत्मा का स्मरण रहे। वैसे ही हर कार्य में मुझे आत्मा याद आये। 'आत्मा कैसे प्रगट हो ?' ऐसी अन्दर से लगन लगे तो आत्मा अन्दर से प्रगट हो; परन्तु प्रतिक्षण ऐसी रुचि और लगन चाहिए।

प्रश्न — परमार्थ की प्राप्ति में किसी प्रकार का आकुल-व्याकुलपना होना उसे श्रीमद्‌जी ने दर्शन परीषह कहा है; तो वे क्या कहना चाहते हैं ?

समाधान — परमार्थ की प्राप्ति हेतु खोटी आकुलता हो वह दर्शन परीषह है। आत्मार्थी व्यर्थ की उतावल नहीं करता परन्तु उसमें धैर्य चाहिए। धीरज रखे तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। आत्मा कैसे प्राप्त हो ? कैसे करूँ ? अब क्यों

प्रगट नहीं होता ?—ऐसी आकुलता हो, वह एक प्रकार का परीषह है; उसमें दर्शनमोह का निमित्त है और कार्य न होने में उपादानकारण अपना है।

आत्मा का ज्ञानस्वभाव किस प्रकार ग्रहण हो ? राग से कैसे पृथक् होऊँ ? भेदज्ञान कैसे हो ? सूक्ष्म होकर प्रज्ञाछैनी से अन्तर में ज्ञान को कैसे ग्रहण करूँ ? इतना समय हो गया फिर भी (कार्य) क्यों नहीं होता ? — ऐसी सर्व आकुलता अन्तर में होती है, तथापि उसमें शान्ति रखे कि मेरी भावना है तो (कार्य) होगा ही। प्रयत्न करता ही रहे और धीरज से मार्ग को पहिचानने का प्रयत्न करे। आत्मा का स्वभाव क्या है ? ज्ञायक क्या है ? ज्ञान सो ही मैं हूँ, यह सब राग है सो मेरा स्वभाव नहीं है। वह वेदन भिन्न जाति का है और ज्ञान का जो जानने का स्वभाव है, वह दूसरी जाति है—इस प्रकार लक्षण से राग को भिन्न पहिचानता रहे और ज्ञान को ग्रहण करे तो सम्यग्दर्शन प्राप्त होने का कारण बनता है तथा दर्शनमोह चला जाता है। परन्तु उसे धैर्य होना चाहिए। यदि आकुलता-उतावल करे तो कार्य नहीं होता। चाहे जितना समय लगे तथापि बारम्बार प्रयत्न करता ही रहे तो सम्यग्दर्शन—प्राप्ति का कारण बनता है। प्रारम्भ में आकुलता तो होती है, परन्तु शान्ति रखना चाहिए।

मुमुक्षु — उतावल करने जायें तो क्या अन्य उलटे-पलटे मार्ग पर चढ़ जायें ?

बहिनश्री — हाँ, उतावल करने से (कार्य) नहीं होता; उल्टे-पलटे मार्ग पर चढ़ जायेगा। उतावल करने जाये तो स्वभाव का ग्रहण नहीं होता; स्वभाव का ग्रहण तो धैर्य से ही होता है। स्वयं शान्ति से अन्तर में सूक्ष्म होकर ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करे तो वह पकड़ने में आये, वैसा है। उतावल करे तो कुछ का कुछ पकड़ा जाये—मिथ्या पकड़ में आ जाये; और खोटा सन्तोष मान ले। कार्य नहीं होता इसलिए (खोटी) उतावल करे तो हानिकर हो जाये।

सच्चा जिज्ञासु और सच्चा आत्मार्थी हो उसे जबतक सच्चा परिणाम नहीं आये तबतक सन्तोष होता ही नहीं। उसका आत्मा ही कह देता है कि यह कोई अन्तर से शान्ति नहीं आती है, इसलिए यह यथार्थ नहीं है; और यथार्थ हो उसे अन्तर से ही शान्ति आती है। उतावल करने से बुरा होता है, मिथ्या ग्रहण हो

जाता है; कहीं न कहीं प्रशस्त राग में रुक जाता है। सूक्ष्म राग पकड़ में नहीं आता और अन्तर में शुभराग को पृथक् नहीं कर सकता या सूक्ष्म होकर ज्ञान को ग्रहण नहीं कर सकता। बारम्बार भावना के विकल्प आयें उनसे भी ज्ञायक पृथक् है, इस प्रकार अन्तर से यथार्थ ग्रहण होना चाहिये। — वह नहीं हो सकता हो और व्यर्थ की उतावल करके कोई परमार्थ को ग्रहण करने के लिये ध्यान करे, परन्तु ऐसे ध्यान में यथार्थ ग्रहण नहीं होता। उस ध्यान में विकल्प शान्त हो जायें, उससे ऐसा लगे कि मानो विकल्प है ही नहीं; परन्तु विकल्प होते हैं तथापि वे नहीं हैं ऐसा उतावल से मान ले तो हानिकर हो जाता है।

मुमुक्षु — सम्यग्दर्शन प्राप्त न हो तबतक उसे प्राप्त करने की आकुलता तो स्वाभाविक होती है; तथापि उसे दर्शन परीषह क्यों कहा ? तथा धैर्य रखने में क्या प्रमाद न हो जाये ?

बहिनश्री — आत्मार्थी को प्रमाद नहीं होता। यह प्रमाद है या धैर्य है, वह उसे पकड़ना चाहिए। धैर्य और प्रमाद में फेर है। यथार्थ ग्रहण न हो तब तक शान्ति रखे वह प्रमाद नहीं है। यथार्थ आत्मार्थी को यथार्थ ग्रहण होता है कि यह प्रमाद है या धैर्य है ? सम्यग्दर्शन के लिये व्यर्थ की आकुलता करना उसे अपेक्षा से दर्शन-परीषह कहा है। वास्तव में तो सम्यग्दर्शन, चारित्र होने के पश्चात सब परीषह लागू होते हैं; परन्तु यह तो उसे सम्यग्दर्शन नहीं हुआ, परमार्थ की प्राप्ति नहीं हुई तथापि अपेक्षा से दर्शनपरीषह कहा है।

कोई झूठी शंका या कुतर्क करते हों तथापि सम्यग्दृष्टि नहीं डिगता। उसे नि:शंकित गुण ऐसा प्रगट हो गया है कि स्वयं अपनी श्रद्धा से चलित नहीं होता। सारा ब्रह्माण्ड में खलबली हो जाये ऐसे (प्रसंग) अथवा चाहे जैसे अन्य परीषह आयें तथा न्याय-युक्ति आयें तब भी स्वयं ने जिस ज्ञायकस्वभाव का ग्रहण किया है उस ज्ञायक में नि:शंक रहता है, उसमें उसे किंचित् शंका नहीं होती। ऐसे परीषह सम्यग्दृष्टि को होते हैं।

जिसे परमार्थ की प्राप्ति नहीं हुई, उस आत्मार्थी को भी परीषह कहा है, वह अपेक्षा से है। सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होता और आकुलता होती है, उस अपेक्षा से उस जाति का परीषह कहा है। भावना यथार्थ है और प्रगट नहीं

होता उसमें (दर्शनमोह) कर्म निमित्तकारण है और कर्म में स्वयं जुड़ा हुआ है। इस प्रकार स्वयं ग्रहण करना चाहता है और ग्रहण नहीं होता, इसलिए उसे दर्शनपरीषह कहा है। कोई विकल्प — कोई शंकाएँ—कोई तर्क बीच-बीच में अपने को रोकते हों वे सभी अन्तरंग परीषह हैं। स्वरूप निर्णय करे वहाँ बीच में कोई शंकाएँ उत्पन्न हों, शंका में भी कोई शंका पैदा हो जाये — इस प्रकार परमार्थ को ग्रहण करने में भीतर अपने परिणाम में अनेक प्रकार की कठिनाईयाँ खड़ी हों उन्हें दर्शनपरीषह कहा है। तथापि वह धीरज से उन सबमें से पार होकर स्वयं निःशंकपने चैतन्य को ग्रहण करे तो सम्यग्दर्शन प्राप्त होने का कारण बनता है।

क्रमशः

जुलाई 2025 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

1 जुलाई – आषाढ़ शुक्ल 6
श्री महावीर स्वामी गर्भ कल्याणक

2 जुलाई – आषाढ़ शुक्ल 7
श्री नेमिनाथ मोक्ष कल्याणक

3 जुलाई – आषाढ़ शुक्ल 8 अष्टमी
अष्टाह्निका व्रत प्रारम्भ

9 जुलाई – आषाढ़ शुक्ल 14
चतुर्दशी, चार्तुमास प्रारंभ

10 जुलाई – आषाढ़ शुक्ल 15
अष्टाह्निका व्रत पूर्ण

11 जुलाई – श्रावण कृष्ण 1
वीर शासन जयंती

12 जुलाई – श्रावण कृष्ण 2
श्री सुव्रतनाथ गर्भ कल्याणक

18 जुलाई – श्रावण कृष्ण 8 **अष्टमी**

19 जुलाई – श्रावण कृष्ण 9
आचार्य कुंदकुंद पदारोहण दिवस

20 जुलाई – श्रावण कृष्ण 10
श्री कुंथुनाथ गर्भ कल्याणक

23 जुलाई – श्रावण कृष्ण 14
चतुर्दशी

26 जुलाई – श्रावण शुक्ल 2
श्री सुमतिनाथ गर्भ कल्याणक

30 जुलाई – श्रावण शुक्ल 6
श्री नेमिनाथ जन्म-तप कल्याणक

31 जुलाई – श्रावण शुक्ल 7
मोक्ष सप्तमी
श्री पार्श्वनाथ मोक्ष कल्याणक

चरणानुयोग

गतांक से आगे

साधु तथा श्रावक के परिप्रेक्ष्य में षट् आवश्यक

स्वाध्याय — आत्मा के शुद्ध स्वरूप का बोध हो, इस अभिप्राय से विधिपूर्वक स्वाध्याय करना प्रत्येक श्रावक का कर्तव्य है। आत्मज्ञान के बिना, अनेक शास्त्रों का ज्ञान भी निरर्थक है और आत्मज्ञान के साथ अष्ट प्रवचन मातृका का जघन्य श्रुतज्ञान भी इस जीव को अन्तर्मुहूर्त में सर्वज्ञ बना देता है; अतः शास्त्र पढ़ते समय स्वकीय शुद्धस्वरूप की ओर लक्ष्य रखना चाहिए।

संयम — बढ़ती हुई इच्छाओं को नियंत्रित करना तथा हिंसादि पाँच पापों से विरक्ति होना, संयम है। यह संयम, इन्द्रिय संयम और प्राणीसंयम के भेद से दो प्रकार का है। पाँच इन्द्रियों और मन की उद्दाम प्रवृत्ति को रोकना, इन्द्रिय संयम है; और छह काय के जीवों की यथाशक्ति रक्षा करना, प्राणी संयम है।

तप — शक्ति अनुसार अनशन, ऊनोदर आदि बाह्य तप तथा प्रायश्चित्त, विनय आदि अन्तरंग तप धारण करना, तप है। श्रावक अपने मन में मुनिव्रत धारण करने का भाव रखता है और मुनिचर्या तपश्चरण प्रधान होती है; इसलिए अभ्यास के रूप में तपश्चरण करता हुआ गृहस्थ मुनिव्रत धारण करने का अभ्यास करता है।

दान — आहार, औषध, ज्ञान और अभय के भेद से दान के चार प्रकार हैं। गृहस्थ अपनी शक्ति के अनुसार इन चारों प्रकार के दानों को देता है। गृहस्थ के दान से ही मुनिमार्ग चलता है; इसलिए गृहस्थ को लोभ तथा उपेक्षाभाव का परित्याग कर दान देने में निरन्तर तत्पर रहना चाहिए। इन चारों दोनों में ज्ञान दान सर्वश्रेष्ठ है।

इसप्रकार हमने देखा कि साधु तथा श्रावक दोनों के आवश्यकों में स्वाध्याय को शामिल किया गया है; क्योंकि स्वाध्याय का फल दो प्रकार है प्रत्यक्ष एवं परोक्ष।

प्रत्यक्ष फल भी दो प्रकार का हैं — साक्षात् व परम्परा भेद से।

साक्षात् — अज्ञान का नाश होकर सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होना और असंख्यात गुणश्रेणी रूप कर्मों की निर्जरा होना।

परम्परा प्रत्यक्ष — शिष्य, प्रतिशिष्य द्वारा प्रशंसा होना या शिष्यों की प्राप्ति होना, लेकिन ज्ञानी जीव इस भावना से स्वाध्याय नहीं करते, अपितु उनकी भावना तो स्वहित के लिए होती है।

परोक्ष फल भी दो प्रकार का है —

1. सांसारिक सुख-ऐश्वर्य की प्राप्ति एवं

2. मोक्ष सुख की प्राप्ति

राजा, महाराजा, अर्धमाण्डलिक, माण्डलिक, महामाण्डलिक, अर्धचक्रवर्ती, चक्रवर्ती, इन्द्र, गणधरदेव, तीर्थंकर परमदेव पद के तीन कल्याणक पर्यन्त अभ्युदय सुख — इन सबको सांसारिक सुख कहते हैं। परम कल्याणमय सुख को मोक्ष सुख कहते हैं।

इसप्रकार ये स्वाध्याय के फल हैं।

जिसप्रकार शरीर को कायम रखने हेतु भोजनपान की आवश्यकता होती है; उसीप्रकार आत्मा के लिए स्वाध्याय परम आवश्यक और अनिवार्य है तथा इसका समावेश षट् आवश्यकों में होता है।

इसप्रकार षट् आवश्यकों का वर्णन पूर्ण हुआ। *क्रमशः*

स्वाध्याय से लाभ

स्वाध्याय से संकल्प चेतना का विकास होता है।
स्वाध्याय से शारीरिक स्फूर्ति आती है।
स्वाध्याय से तनाव से मुक्ति मिलती है।
स्वाध्याय से समता का विकास होता है।
स्वाध्याय से आत्म-तृप्ति होती है।
स्वाध्याय से दृष्टि परिवर्तन होता है।
स्वाध्याय से इच्छा का उपशम होता है।
स्वाध्याय से चित्त समाधि होती है।
स्वाध्याय से रोगों से मुक्ति मिलती है।
स्वाध्याय से बुद्धि का परिष्कार होता है।
स्वाध्याय से स्वभाव परिवर्तन होता है।

पण्डित हेमराज पांडे

पण्डित हेमराज पांडे 17वीं शताब्दी में दिगम्बर जैन अग्रवाल, व्यापारी, जाति और गर्ग गोत्र से सम्बन्धित एक भारतीय लेखक थे। वे आगरा से थे। उनकी एक बेटी थी जिसका नाम जैनुलदे (जैनी) था, जो एक अन्य कवि किंवदंती बुलाकीदास की माँ थीं और हेमराज बुलाकी के नाना थे। उन्होंने कई जैन ग्रंथों पर टीका लिखी थीं। रूपचन्द पांडे के शिष्य होने के नाते एक विचार ऐसा भी मिलता है जो 1635 में आप आगरा में बस गए थे और उन्होंने गोम्मटसार पर धर्मोपदेश दिए थे। एक मत ऐसा है कि पांडे संस्कृत पंडिता का एक स्थानीय रूप या पंडित के रूप में, हेमराजजी एक भट्टारक द्वारा नियुक्त मंदिर का प्रशासन करने वाले एक जैन थे।

उन्होंने 1652 में राजमल्ल की समयसार पर टीका के आधार आचार्य कुन्दकुन्द के प्रवचनसार पर एक टीका लिखी। उनहोंने उसी वर्ष चौरासी बोल में जैन संप्रदायों, दिगम्बर और श्वेताम्बर के बीच मतभेद भी लिखे। उन्होंने ये ग्रंथ आगरा के कंवरपाल या कौरनपाल के अनुरोध पर लिखे थे। सूची में शामिल लोगों के अलावा उनकी कई अन्य रचनाएँ भी संग्रहीत हैं और उत्तर भारत के कुछ धार्मिक पुस्तक अभिलेखागार में पाई जा सकती हैं। हेमराज, कौरपाल या कुंवरपाल के घनिष्ठ मित्र थे, जिसका उल्लेख बनारसीदास ने अपनी आत्मकथा 'अर्धकथानक' में किया है। आश्चर्य की बात है कि बनारसीदास ने हेमराज को आगरा के प्रमुख दिगम्बर विद्वानों में शामिल नहीं किया है। हेमराज का उल्लेख सबसे पहले हीरानन्द ने किया है, जो अपने समावरणविधान में उन्हें 'बुद्धिमान और सुसंस्कृत' के रूप में वर्णित करते हैं।

इन्होंने ब्रजभाषा में कुछ मौलिक रचनाएँ लिखीं। इन्होंने छठी शताब्दी के आचार्य मानतुंगा के जैन रचना भक्तामर स्तोत्र का भी अनुवाद किया। यह बनारसीस द्वारा कल्याणमंदिर स्तोत्र के अनुवाद की शैली में किया गया था। ऐसा लगता है कि इन्होंने अन्य विद्वानों के ग्रंथों पर भाष्य लिखने में विशेषता हासिल की थी।

रचनाएँ — प्रवचनसार (गद्य-पद्य, अनुवाद), भक्तामर स्तोत्र (गद्य-पद्य, अनुवाद), चौरासी बोल (सीतपत चौरासी बोल), परमात्माप्रकाश (अनुवाद), पंचास्तिकाय (अनुवाद), गोम्मटसार कर्मकाण्ड (अनुवाद), सुगंध दशमी व्रत कथा, नयचक्र (अनुवाद), गुरुपूजा, नेमिराजमती जाखड़ी, रोहिणी व्रत कथा, नन्दीश्वर व्रत कथा, राजमती चुनरी, समयसार (अनुवाद) आदि।

वीर निर्वाण संवत् की प्राचीनता एवं संवत् विमर्श

वर्तमान में प्रचलित संवतों में सबसे प्राचीन संवत् वीर निर्वाण संवत् है। जब भी संवतों की चर्चा चलती है तो उसकी गणना अभी सर्वाधिक प्रचलित ईस्वी सन् से की जाती है। ईस्वी सन् अर्थात् ईसा मसीह के जन्म से प्रारम्भ सन् इसकी चर्चा दो प्रकार से होती है।

ईसा पूर्व – ईसा मसीह के जन्म से पहले का काल।

ईस्वी सन् – ईसा मसीह के जन्म के बाद का काल।

वर्तमान में देखते हैं तो विक्रम-शक-हिजरी-ईस्वी-शिख-वीर निर्वाण आदि प्रचलित संवत् हैं। इनके प्रारम्भ काल, प्रारम्भ के कारण आदि पर विचार करते हैं तो वीर निर्वाण संवत् सबसे प्राचीन संवत् सिद्ध होता है, जो निम्न तालिका से स्पष्ट है —

संवत् का नाम	प्रारम्भ काल	प्रारम्भ का कारण	वर्तमान प्रारम्भ में संवत्
वीर निर्वाण संवत्	527 ईसा पूर्व	भगवान महावीर का निर्वाण	2550 (कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा)
विक्रम संवत्	57 ईसा पूर्व	राजा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा	2080 (चैत्र कृष्ण प्रतिपदा)
शक संवत	78 ईस्वी	शक राजा शालिवाहन की प्रमुख सैन्य विज की स्मृति	1945 (चैत्र शुक्ल प्रतिपदा)
हिजरी संवत्	622 ईस्वी	हजरत मुहम्मद के मदीना आने पर	1445 (मुहर्रम से)
सिख संवत्	1469 ईस्वी	गुरु नानक देव की जन्मतिथि	554 (होली से)
ईस्वी सन्	0 ईस्वी	ईसा मसीह के जन्म से	2023 (1 जनवरी से)

उपर्युक्त सारणी को देखने पर वीर निर्वाण संवत् सर्वाधिक प्राचीन संवत् सिद्ध होता है। प्राप्त शिलालेखों के आधार पर भी निर्वाण संवत् प्राचीन सिद्ध होता है। राजस्थान के अजमेर जिले में भिनय तहसील के अन्तर्गत वडली एक गाँव है। सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 1912 में वडली के शिलालेख

की खोज की थी। वडली के शिलालेख में वीर निर्वाण संवत् का उल्लेख हुआ है। यह वीर शब्द महावीर स्वामी के लिए आया है। इस शिलालेख पर 84 वीर संवत् लिखा है। भगवान महावीर के निर्वाण के 84वें वर्ष में यह शिलालेख लिखा गया। सुप्रसद्धि इतिहासकार डॉ. राजबली पांडेय ने अपनी पुस्तक 'इंडियन पैलियोग्राफी' के पृष्ठ 180 पर लिखा है कि 'अशोक के पूर्व के शिलालेखों में तिथि अंकित करने की परम्परा नहीं थी। वडली का शिलालेख तो एक अपवाद है। अभी तक इस शिलालेख से पूर्व का कोई भी प्रमाण नहीं है, जो किसी और संवत् की परम्परा को दर्शाता हो। फिलहाल यह शिलालेख अजमेर के संग्रहालय में सुरक्षित है।

सबसे प्राचीन 'वीर निर्वाण संवत्' का शुभारम्भ — ईसा से 527 वर्ष पूर्व कार्तिक कृष्ण अमावस्या को स्वाति नक्षत्र में दीपावली के दिन भगवान महावीर का निर्वाण हुआ था, उसके एक दिन बाद कार्तिक शुक्ल एकम् से भारतवर्ष का सबसे प्राचीन संवत् 'वीर निर्वाण संवत्' प्रारम्भ हुआ था।

यह भारत का सबसे प्राचीन नव वर्ष है। यह हिजरी, विक्रम, ईसवी, शक आदि सभी संवतों से भी अधिक पुराना है। जैन परम्परा के प्राकृत तथा संस्कृत भाषा के प्राचीन ग्रंथों / पांडुलिपियों में तो इस बात के अनेक प्रमाण हैं साथ ही पुरातात्त्विक साक्ष्यों से भी यह संवत् सबसे अधिक प्राचीन सिद्ध होता है।

वीर निर्वाण संवत् में 12 माह, 2 पक्ष, 30 दिन होते हैं।

12 माह - चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ (जेठ), आषाढ़, श्रावण (सावन), भाद्रपद (भादों), अश्विन (क्वार), कार्तिक, मार्गशीर्ष (अगहन), पौष (पूस), माघ (महा), फाल्गुन।

पक्ष (15 दिन का होता है) -

1. कृष्ण पक्ष (वदी) चन्द्रमा का घटना,
2. शुक्ल पक्ष (सुदी) चन्द्रमा का बढ़ना।

तिथि - एकम (पड़वा), द्वितीया (दौज), तृतीया (तीज), चतुर्थी (चौथ), पंचमी (पाँचे), षष्ठी (छठ), सप्तमी (सातें), अष्टमी (आठें), नवमी (नौमी), दशमी (दसवीं), एकादशी (ग्यारस), द्वादशी (बारस), त्रयोदशी (तेरस), चतुर्दशी (चौदस),

शुक्ल पक्ष में : पूर्णिमा (पूनो), **कृष्ण पक्ष में :** अमावस्या (मावस)।

साभार : डॉ. अनेकान्त जैन, दिल्ली

<u>समाचार-दर्शन</u>

श्री वर्द्धमान ज्ञानतीर्थ, ग्रेटर नोएडा 'शुभारंभ' का भव्य आयोजन सम्पन्न

ग्रेटर नोएडा : रविवार दिनांक 22 जून 2025 को श्री वर्द्धमान ज्ञानतीर्थ, ग्रेटर नोएडा में त्रिलोकीनाथ श्री जिनेन्द्र भगवान के मंगल आगमन के साथ 'शुभारंभ' — विशाल साधर्मी सभा का आयोजन अत्यंत श्रद्धा व गरिमा के साथ सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर श्री दिव्यदेशना ट्रस्ट के अध्यक्ष श्रीमान अजीत प्रसाद जैन एवं समस्त ट्रस्टीगण द्वारा श्री वर्द्धमान दिगंबर जैन आचार्य महाविद्यालय एवं श्री वर्द्धमान शोध संस्थान का विधिवत शुभारंभ किया गया।

साथ ही सर्वसुविधायुक्त छात्रावास व श्री वर्द्धमान पुस्तकालय का भी उद्घाटन सम्पन्न हुआ।

सभा की अध्यक्षता श्री परमात्म प्रकाश भारिल्ल (जयपुर) ने की तथा मुख्य अतिथि के रूप में श्री राजीव जैन (IPS) उपस्थित रहे। प्रतिष्ठाचार्य बालब्रह्मचारी अभिनंदन कुमार जैन शास्त्री ने आयोजित होने वाले श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजन की तिथि 25 नवंबर से 30 नवंबर 2025 उद्घोषित की, जिसमें श्री बिपिन जैन शास्त्री मुंबई, पंडित संजय जैन जेवर, डॉ. शुद्धात्म प्रकाश भारिल्ल जयपुर, पंडित डॉ. विवेक जैन शास्त्री इंदौर आदि और अनेक स्थानीय विद्वानों का सान्निध्य मिला। प्रो. वीरसागर जैन ने जैनशिक्षा एवं शोध का महत्व सोदाहरण प्रति किया। पंडित राकेश जैन शास्त्री, प्राचार्य ने संस्थान की नीति को अलंघ्य जिननीति के स्पष्ट पालन की प्रमुखता प्रदर्शित की।

देशभर से पधारे सैकड़ों विशिष्ट अतिथियों व अनेक विद्वानों की पावन उपस्थिति में यह कार्यक्रम अत्यंत सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

अपनी प्रति आरक्षित करें

गुरुवर्य पण्डित गोपालदास वरैया द्वारा विरचित **श्री जैन सिद्धान्त प्रवेशिका** का नवीन संस्करण का प्रकाशन तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा किया जा चुका है।

सम्पर्क सूत्र : पंडित अभिषेक शास्त्री - 9997996346

सर सेठ हुकुमचन्दजी की महानता

लगभग सन् 1940 में इंदौर के प्रसिद्ध सेठ श्री हुकुमचन्दजी देश में अपनी अथाह सम्पत्ति के साथ अपनी उदारता के लिये विख्यात थे। वे इतने धनवान थे कि अंग्रेज सरकार भी इनसे धन उधार के रूप में लेती थी। उन्होंने अपने जीवन में अनेक परोपकार के कार्य किये। उन्होंने इन्दौर में जैनधर्म के अध्ययन के लिये गुरुकुल की स्थापना की और अपनी मृत्यु के पूर्व लिखा —

1. मैंने इस गुरुकुल के संचालन के लिये विशाल राशि का फंड बना दिया है। अत: मेरे मरने के बाद इस राशि से गुरुकुल चलाते रहना।

2. यदि यह फंड समाप्त हो जाये तो मेरी विशाल संपत्ति को बेच देना और गुरुकुल चलाते रहना।

3. यदि संपत्ति बेचकर मिली संपत्ति मिल जाये तो मेरे पुत्रों के पास चले जाना, वे निश्चित रूप से सहयोग करेंगे।

4. यदि किसी कारण से मेरे पुत्र धन न दें तो मैं झोली फैलाकर भीख माँगता हूँ कि समाज के कोई व्यक्ति आगे आना और गुरुकुल को चलाते रहना, मैं आपका धन चुका दूँगा, मेरा जहाँ पुनर्जन्म होगा तो मैं नौकर बनकर आपका ऋण चुका दूँगा, मुझे बैल बनकर भी आपका ऋण चुकाना पड़े तो मैं चुका दूँगा किन्तु ज्ञानदान का यह मिशन किसी भी हालत में चलते रहना चाहिए।

हार्दिक बधाई

मङ्गलार्थी विक्रम विशाल जैन, सी.ए. बनने पर मङ्गलायतन परिवार की ओर से हार्दिक बधाई एवं उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएँ।

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

वस्त्रसहित मुनिपना मानने में गृहीतमिथ्यात्व

वस्त्रसहित मुनिपना माननेवाले को तीर्थङ्कर भगवान को भी वैसा ही कहने वाला मानना पड़ेगा और शास्त्र भी वैसे ही मानने पड़ेंगे। इस प्रकार उसकी श्रद्धा में देव, गुरु और शास्त्र – इन तीनों के स्वरूप में विपरीतता हो जाती है। इस मान्यता में तो गृहीत मिथ्यात्व है। अहो! मुनिदशा का सम्यक्त्व, उनकी आत्मा में प्रवर्तमान चारित्रदशा और उनकी केवलज्ञान प्राप्त करने की तैयारी! – ऐसी मुनिदशा को विपरीत माननेवाला कुन्दकुन्द आचार्य का विरोध करता है। एक ओर से कुन्दकुन्द भगवान को महान कहना और वस्त्रसहित मुनिदशा मानना, इन दोनों बातों का मेल नहीं है। क्योंकि कुन्दकुन्द भगवान तो कहते हैं —

'वस्त्रसहित मुनिपना तीन काल में होता ही नहीं। वस्तुस्वरूप का भगवान कथित और सन्तों द्वारा अनुभवित मुनिदशा का मार्ग यही है, इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग है ही नहीं। वस्त्रसहित भी मुनिपना होता है और वस्त्ररहित भी मुनिपना होता है – ऐसे दो प्रकार हैं ही नहीं। मुनि को निर्ग्रन्थ कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि उन्हें अन्तरङ्ग में तीन कषाय चौकड़ी की ग्रन्थि टूट गयी है और बाह्य में वस्त्रादिक परिग्रह का अभाव है – ऐसी दशा हो, वही वीतरागमार्ग में मुनिपना है।

(– प्रवचनसार, 210, सद्गुरु प्रवचन प्रसाद, दैनिक, 15-4-1951)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक :** डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि.वि.

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust

Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22

info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com